International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 24-11-2019; Accepted: 25-12-2019
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 1; January 2020; Page No. 74-75

भारतीय गौरव–गायकः कवि जयशंकर प्रसाद

डॉ० पुलकित कुमार मण्डल
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पी०बी०एस० कॉलेज, बाँका, ति०मा०भा०वि० वि० भागलपुर, बिहार, भारत

प्रस्तावना

हमारे पूर्वजों द्वारा कृत वैसे कार्य जो लिखित या अलिखित रूप में हमें ज्ञात हैं, हम उनसे वर्त्तमान में लाभान्वित हो रहे हैं और भविष्य में भी लाभान्वित होंगे, साहित्य कहलाते हैं।

साहित्य का उद्देश्य है – वर्तमान को अतीत से पोषित करना और सबलता–पूर्वक भविष्य तक पहुँचाना। पुरा पाषाण काल में हम मनष्य पूरी तरह असंगइित एवं असहाय थे। हममें शारीरिक उद्दीपन तो था, लेकिन संचेतना नहीं थी। हम पशुवत जीवन जी रहे थे। कालान्तर मे हममें थोड़ी चेतना जगी तो अकस्मात मिलने वाले अनगढ़ पत्थरों से हम भोजन की व्यवस्था एवं स्वयं की रक्षा भी करने लगे। हममें और अधिक चेतना जगी तो हम संगठित होने लग। सुनियोजित रूप से पत्थरों के औजार बनाकर उससे शिकार एवं कृति कार्य करने लगे और हमने एक सभ्यता स्थापित की जो नवपाषण कालीन सभ्यता कहलाई। हममें आत्म–गौरव, कुल–गौरव एवं समाज–गौरव का विकास होने लगा। उसी समय से हममें सौन्दर्य–भाव एवं ईश्वरीय–भाव की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात पीढ़ी–दर–पीढ़ी श्रुति–परम्परा में आख्यान भी होने लगे जिसे हम साहित्य की उत्पत्ति भी कह सकते हैं।

समाज में साहित्य एवं साहित्यकारों सका योगदान

सामाजिक स्मृतियों को संजो कर समाज को सांस्कृतिक रूप से गतिशील रखने का कार्य साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से करता है। साहित्यकार अपने साहित्य से हमें सामाजिक सौन्दर्य, गुण एवं उपलब्धियों का बोध कराकर गौरवान्वित करता है और हम नयी ऊर्जा से पूरित होकर अपने लक्ष्य–प्राप्ति के लिए चल पड़ते हैं।

राष्ट्रीय गौरव के अन्वेषक के रूप में जयशंकर प्रसाद

हमारा देश भारत प्राचीन काल से ही प्राकृतिक संसाधन, प्राकृतिक सौन्दर्य, बौद्धिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप में समृद्ध रहा है, तभी तो विदेशियों ने इसे आर्थिक रूप से लूटने, शासन करने एवं यही रच–बस जाने का बरंबार प्रयास किया। वे अपने प्रयासों में सफल भी रहे। हमने उनके दुस्साहसों का प्रतिकार भी किया और उनके सप्रेम आगमन का स्वागत भी किया, क्योंकि प्रेम के क्षेत्र में हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' में विश्वास रखते हैं। देश की इसी विशेषता को उजागर करते हुए कवि प्रसाद जी ने 'चंद्रगुप्त नाटक में गीत लिखा है –

"अरूण यह मधुय देश हमारा जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलत एक सहारा।"1

भारत की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि प्रसाद जी ने 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' कविता में ही कहा है –

"सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरूशिखा मनोहर छिटका जीवन हरियाली पर– मंगल कुंकुम सारा।"2

साहित्यकार का उद्देश्य है, समाज को समृद्ध एवं गौरवमयी विरासत से परिचित कराकर उसे प्रगति एवं स्वयं की रक्षा के लिए प्रेरित करना। कवि जयशंकर प्रसाद भी हम भारतवासियों को प्रेरित करते हुए अपने नाटक 'चंद्रगुप्त' के छठे अध्याय में रचित प्रयाण गीत में कहते है :

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है
बढ़े चलो–बढ़े चलो..."3

हमारे पूर्वजों द्वारा कृत महान कार्यों के प्रमाण आज भी मिल रहे हैं। वे प्रमाण हमें भी महान कार्य करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, लेकिन हम ही अपनी क्षमताओं के प्रति आश्वस्त नहीं हैं, फिर वे प्रमाण हमसे ही प्रश्न कर रहे है कि हमारे कृत महान कार्यों की परम्परा का निर्वहन अंततः कौन करेगा? और हम सब निरूत्तर हैं। हमारे समक्ष आज जो ऐसी स्थिति है, इसका कारण है कि हम अपनी सभ्यता–संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। कवि प्रसाद जी ने 'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता में अतीत से मिलने वाली चुनौती एवं परम्परा के प्रति हमारी पलायनवादी प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है –

"कौन लेगा भार यह?
जीवित है कौन?
साँस चलती है किसकी
कहताा है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ–
मैं हूँ – मेवाड़ में,
अरावली शृग–सा समुन्नत सिर किसका
बोलो कोई बोलो–अरे क्या तुम सब मृत हो?"4

आत्म–मुग्धता एवं अतीत–मुग्धता की अधिकता हमारे विकास को बाधित कर देती है। हमें अपने गौरवपूर्ण अतीत से एवं ऊर्जा लेकर श्रम करते हुए विश्व के साथ पद–ताल करते हुए चलना है और आवश्यकता पड़ने पर आगे बढ़कर विश्व–विकास का नेतृत्व भी करना है। आज हममें आलस्य आने लगा है। किसी घटना–वश जब हमारी तंद्रा भंग करके विकास पथ पर चलने के लिए कहा जाता है, तो हम आलस्यवश होकर पुनः तंद्रा में चले जाते हैं और अपने अतीत का गौरव–गान करते हुए संचेतक को चुप करा देते हैं।

कवि प्रसाद जी ने हम भारतवासियों को अतीत से प्रेरणा और ऊर्जा ग्रहण कर विकास–पथ पर चलने के लिए ही आह्वान किया है, न कि अतीतजीवी बन जाने के लिए। इन्होंने 'बीती विभावरी जाग री कविता मे हमें प्रेरित करते हुए कहा है–

"अधरों में राग अमन्द पिये

अलकों में मलयज बंद किये तू अब तक सोई है आली
आँसों में भरे विहाग री।"5

वर्तमान के इस आर्थिक युग में हम केवल अपने भौतिक सुख के संसाधनों को ही महत्त्व देने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप हम अपनी सभ्यता–संस्कृति, साहित्य एवं इतिहास को भूलते जा रहे हैं या इसे याद रखना आवश्यक नहीं मान रहे हैं। इसी का दुष्परिणाम है कि दूसरे राष्ट्र हमारी क्षमता और मेधा का भरपूर दोहन कर रहे हैं और हमें सांस्कृतिक रूप से भी परतंत्र बनाते जा रहे हैं। हम भी परतंत्र होकर उनकी सभ्यता–संस्कृति को उत्तम और अपनी सभ्यता–संस्कृति को निकृष्ट मान कर छोड़ते जा रहे हैं। हमारी इस परलोभी अवस्था पर यह व्यंग्य सटीक लग रहा है कि– 'बेगाने की शादी में अब्दुला दिवाना।' अपने राष्ट्र–भाव से रहित व्यक्ति के लिए कवि गया प्रसाद शुक्ल सनेही की यह पंक्ति अत्यंत उपयुक्त लग रही है कि – "जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं, हृदय नहीं वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।"

हमें अपने देश की विधि–व्यवस्था में कुछ कमी लगे तो पूरी विधि–व्यवस्था को ही हम नकार नहीं दें, बल्कि उसमें सुधार करने का प्रयास करें। राष्ट्रकवि गुप्त जी अपनी 'आर्य' कविता में कहते हैं–

"हम कौन थे, क्या हो गये हैं, और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, यह समस्याएँ सभी।"6

सभ्यता और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में श्री हृदय नारायण दीक्षित ने 15 जनवरी 2018 ई० को दैनिक जागरण समाचार पत्र में प्रकाशित अपने सम्पादकीय आलेख में कहा है कि –

"संस्कृति निरपेक्ष नहीं होती। प्रत्येक संस्कृति का अपना दर्शन होता है। हरेक संस्कृति की एक सभ्यता होती है। सभ्यता को समाज की देह कहा जाता है और संस्कृति को सभ्यता का प्राण। सभ्यता और संस्कृति से मिलकर एक जीवन शैली का विकास होता है। भारत में इसी जीवन शैली का नाम धर्म है।"7

कई विदेशी विद्वान–इतिहासकार एवं उनसे प्रभावित भारतीय विद्वान–इतिहासकार भी यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे है कि भारत में स्थापित सभ्यता–संस्कृति यहाँ की वास्तविक सभ्यता–संस्कृति नहीं हैं, बल्कि उत्तर–पूर्व एशिया एवं यूरोप से उधार ली गई है। लेकिन यदि हम धैर्य – पूर्वक विचार करें तो पाएँगे कि ज्ञान का सबसे प्राचीन संचित कोश अर्थात् वेद ग्रंथ भारतीय भाषा संस्कृति में रचित है। यदि हमारी सभ्यता विदेशों की देन होती तो वेद–ग्रंथ के अंश और संस्कृत भाषा तथा कथित पश्चिमोत्तर एशिया एवं यूरोप में भी प्राप्त होते। रही बात भारत में गौरवर्णी एवं श्यामवर्णी मानव का पाया जाना, तो हम जानते हैं कि भारत में भौगोलिक एवं जलवायविक विभिन्नता अन्य देशों की अपेक्षा सर्वाधिक है और उसी का प्रभाव यहाँ के रंग–रूपों एवं भाषा–संस्कृति पर पड़ा है। महाकवि प्रसाद जी ने सभ्यता–संस्कृति, भाषा एवं ज्ञान–विज्ञान एवं सर्वप्रथम मानव उत्पत्ति स्थल के रूप में भारतीय उपमहाद्वीप की श्रेष्ठता सिद्ध की है। इन्होंने भारत महिमा नामक कविता में भारतीय महिमा का गान किया है, जिनकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:–

"हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया पहाया हीरक–हार
जगे हम, लगे जमाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक
व्योम–तम पुँज हुआ तब नष्ट अखिल संसृति हो उठी अशोक
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आए थे नहीं"8

इस प्रकार उपर्युक्त विचारों से सिद्ध होता है कि अपनी रचना विशेषकर कविताओं के माध्यम से भारतीय गौरव–गान करने वाले साहित्यकारों में कवि जयशंकर प्रसाद अग्रगण्य हैं। अंत में मैं यही कहना चाहूँगा कि –

"प्रकाश के अभाव में समस्त सौन्दर्य–गर्व शून्य हो जाता।
प्रसाद के अभाव में हिन्दी साहित्य में भारतीय गौरव दृष्ट न होता।"

संदर्भ सूची

1. चंद्रगुप्त (नाटक), जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन प्रा०वि०, नई दिल्ली 02 वर्ष 1994, 2010, पृ० 73
2. वही
3. वही, पृ० 143–144
4. प्रसाद, पंत, निराला महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ, वाचस्पति पाठक, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद – 01, पृ० 64–64
5. वही, पृ० 60
6. 'भारत–भरती', मैथिलीशरण, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद – 01, 46वाँ संस्करण, वर्ष 2012, पृ० 14
7. दैनिक जागरण, 15 जनवरी 2018, हृदयनारायण दीक्षित, भागलपुर अंक संपादकीय
8. 'भारत–वर्ष' (कविता) जयशंकर प्रसाद 'पद्य–प्रसून' (आधुनिक हिन्दी काव्य संकलन) प्रो० गायत्री देवी एवं श्रीमती नीलिमा प्रसाद, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली 07, वर्ष 2003 ई०, पृ० 44–45